DEV SANSKRITI: Interdisciplinary International Journal **(2012) , 01, 06-11**

vk;|o:fnd i|pde ,o ;kfxd "kVde dh r|yukRed leh{kk

सुनील कुमार एवं विनोद उपाध्याय

सारांश

प्राचीन भारतीय आयुर्विज्ञान जहाँ जीवन में स्वास्थ्य का समावेश करने में सहयोगी सिद्ध होता है वहीं योग जीवन में स्वास्थ्य एवं सौंदर्य लाने की अद्वितीय कला है। इन दोनों के पास बिल्कुल अलग अवधारणाएँ है। ये विकृतियों या व्याधियों का दमन नहीं बल्कि उनका शमन करते हैं, जिससे उनके पुनः आगमन की संभावना भी समाप्त हो जाती है। इसलिए इनकी विभिन्न क्रियाओं को उपचार एवं शारीरिक विकास हेतु तेजी से प्रयोग किया जा रहा है। पंचकर्म एवं षट्कर्म जो क्रमशः आयुर्वेद एवं योग के अंग हैं, दोषों को शरीर से निरहरण करते हुए शरीर की शुद्धि एवं मानसिक संतुलन में सहायक हैं। इन दोनों का उद्देश्य शोधन द्वारा त्रिदोषों में साम्यावस्था स्थापित करना होता है। षट्कर्म का पंचकर्म से सैद्धान्तिक मेल होने के कारण उचित उपयोग हेतु इनके मध्य व्याप्त समानताओं व विषमताओं से परिचित होना आवश्यक है। इसी उद्देश्य से इस शोध पत्र में मौलिक सिद्धान्तों, तथ्यों व शोध परिणामों के आधार पर पंचकर्म व षट्कर्म की तुलनात्मक समीक्षा की है, जिसके परिणामस्वरूप इनका उचित प्रयोग किया जा सके। अतः इस शोध पत्र में यह बताने का प्रयास किया है कि इनके मध्य कुछ सैद्धान्तिक समानतायें विद्यमान हैं क्योंकि ये दोनों कर्म त्रिदोषों का निरहरण करके साम्यता स्थापित करते हैं। पंचकर्म में औषधि, मंत्र व यंत्र का प्रयोग किया जाता है जबकि षट्कर्म में जल व नमक का ही प्रयोग होने के कारण इनके मध्य क्रियात्मक विषमताओं का भी अस्तित्व है, जो कि भविष्य में होने वाले शोध व वर्तमान में जिज्ञासु जन–मानस को इनके मूलभूत सिद्धान्तों से परिचित कराकर उन्हें अग्रिम मार्ग प्रशस्त करने में सहायक बने।

कूट शब्द : षट्कर्म, पंचकर्म, त्रिदोष।

शोधन चिकित्सा का मूल बीज वाग्भट् द्वारा वर्णित द्विविधोपक्रम है। इसके अन्तर्गत संतपर्ण एवं अपतपर्ण चिकित्सा का वर्णन किया गया है। संतपर्ण को वृहण व अपतवर्ण को लंघन कहा जाता है (गुप्त, 2000)। लंघन के दो भेद शोधन तथा शमन है (गुप्त, 2000)। शोधन के अन्तर्गत ही आयुर्वेद की पंचकर्म चिकित्सा को मान्यता दी गयी है। कुछ आयुर्वेद विशेषज्ञों ने चरक वर्णित षड्विधोपक्रम को पंचकर्म का उद्गम माना है। षड्विधोपक्रम में लंघन, वृहण, रूक्षण, स्नेह, स्वेदन व स्तंभन का समावेश किया गया (शास्त्री, 2001)। इनके माध्यम से त्रिदोष जन्य रोगों का उपचार किया जाता है। चरक एवं वाग्भट् संहिता के सूक्ष्म अवलोकन से यह सिद्ध हुआ कि पंचकर्मों के अन्तर्गत वमन, विरेचन, वस्ति (अनुवासन एवं निरुह वस्ति) नस्य एवं रक्तमोक्षण का ही समावेश है।

पंचकर्म विशेषज्ञों ने ज्यादातर रोगापचार में पंचकर्मों को अपरिहार्य बताया है, क्योंकि जब तक पुराने कषाय–कल्मषों का औषधियों के माध्यम से सम्यक् निरहरण शरीर से नहीं होता है तो कोई भी औषधि रोगी को देने पर वह प्रभावशाली नहीं होगी। परिणामतः रोग पूर्वतः बना रहेगा।

घट (शरीर) शुद्धि के लिए महर्षि घेरण्ड ने घेरण्ड संहिता में सप्त साधन के अन्तर्गत षट्कर्म का प्रतिपादन किया है, जिसमें धौति, वस्ति, नेति, लौलिकी, त्राटक व कपालभाति इन छः कर्मों का वर्णन किया गया है (सरस्वती, 1997)। इनका वर्णन हठप्रदीपिका (1360–1650) में भी किया गया है (झा, 2001)। षट्कर्म तीनों दोष वात–पित–कफ की उत्पत्ति एवं संचय स्थानों को प्रभावित करता है तथा बढ़े हुए दोषों को समभाव में लाता है जो अभ्यासी को शारीरिक शुद्धि व मानसिक संतुलन प्रदान करते हुए, इड़ा व पिंगला के मध्य सेतु स्थापित कर सुषुम्ना में प्राण प्रवाह को बल प्रदान करते हैं।

योग मानव जीवन को समग्र रूप से प्रभावित करने वाली कला है। इसी प्रकार आयुर्वेद शास्त्र की सांस्कृतिक, सामाजिक तथा आर्थिक दृष्टि से महत्ता है (शुक्ल, 2003)। पंचकर्म व षट्कर्म क्रमशः आयुर्वेद व योग के वैदिक ऋषियों द्वारा प्रदत्त ऐसे कर्म है जो वैज्ञानिकता व आध्यात्मिकता के दो तटों के मध्य स्थित होकर जनजीवन को अनवरत उत्कृष्टता की ओर अग्रसर करते चले आ रहे है। यद्यपि पंचकर्म व षट्कर्म के सिद्धान्त शोधन पर आधारित है फिर भी इन दोनों कर्मो की क्रियाओं के मध्य किंचित भिन्नतायें भी अस्तित्वगत है। इसीलिये पंचकर्म व षट्कर्म की क्रियाओं को प्रयोग में लाते समय दुविधा व असमंजस की स्थिति पैदा हो जाती हैं। इसी समस्या के निराकरण हेतु इस शोध पत्र में आयुर्वेदिक पंचकर्म व यौगिक षट्कर्म का तुलनात्मक अध्ययन

किया गया है, जिसके अन्तर्गत इन दोनों के मध्य व्याप्त समानता व विषमता का शोध किया गया है।

'kk/k i.kkyh

यह एक सैद्धान्तिक शोध कार्य है, जिसमें सिद्धान्तों व आँकड़ों का विश्लेषण किया गया है। सिद्धान्तों के लिए आयुर्वेदिक व यौगिक मूलग्रन्थों से अध्ययन सामग्री ली गयी है। इसके अलावा पूर्व में हुए शोध पत्रों से आँकड़ें व टीकाओं से तथ्यों को एकत्र किया गया है। जिसका विवरण निम्नवत् है–

1. विभिन्न अनियमितताओं के कारण दोष कोष्ठों में उत्पन्न होते हैं। तत्पश्चात् शाखा में जाकर रोग का मूल कारण बनते हैं या रोग उत्पन्न करते हैं। इन प्रकुपित दोषों को पुनः कोष्ठ में लाना और नजदीक के मार्ग से निकाल देना, यही आयुर्वेद का सिद्धान्त है। आचार्य चरक ने दोषों के निरहरण हेतु पाँच उपाय बताये हैं– 1. दोषों में वृद्धि कराकर 2. विस्यंदन या विलयन कराकर 3. दोषपाक कराकर 4. स्रोतों के मुखों को खोलकर 5. शरीर के अंदर वायु का निग्रह करके (शास्त्री, 2001)। पंचकर्म मुख्यतः इसी सिद्धान्त के अन्तर्गत कार्य करता है कि उपयक्रक्त साधनों से शाखाश्रित दोषों का निकटतम मार्ग से निरहरण कराते हैं, जिससे आरोग्य की प्राप्ति होती है। यौगिक सिद्धान्त के अनुसार शारीरिक शुद्धता की अवस्था प्राप्त होने पर मन भी शुद्ध बनता है क्योंकि मन और शरीर एक दूसरे से अलग नहीं हैं। योग कहता है कि शरीर और मन के बीच घनिष्ठ संबंध है। अतः शरीर और मन के शुद्धिकरण हेतु ही हठयोग में षट्कर्म की अवधारणा को प्रतिपादित किया गया है।
2. षट्कर्म का पंचकर्म से सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक मेल है (सिंह, 1999) । ये दोनों शोधन की क्रियायें त्रिदोषों का निरहरण करके इनका साम्य स्थापित करने में सहायक है। इसके साथ–साथ औषधि उपचार के पूर्व पंचकर्म आवश्यक है। इसी प्रकार यौगिक उपचार के पूर्व षट्कर्म का करना नितान्त आवश्यक है।
3. पंचकर्म के अन्तर्गत औषधियों के क्वाथ, रस, चूर्ण आदि का प्रयोग होता है, जबकि षट्कर्म में पानी एवं नमक का प्रयोग किया जाता है।
4. पंचकर्म में शोधन यंत्रों व विभिन्न मंत्रों के उच्चारण का विधान है, जबकि षट्कर्म के अन्तर्गत कुछ सामग्रियों का प्रयोग किया जाता है।

सारणी (1):

Ø- l-	vk;|ofnd ipdeZ	mi;kxh lkexh	Ø- l-	;kfxd "kV~deZ	mi;kxh lkexh
1.	वमन	मदनफल, मुलेठी या करंज।	1.	धौति (वमन, दण्ड एवं वस्त्र धौति)	नमक, जल, दण्ड एवं वस्त्र धौति।
2.	विरेचन	हरड. एरण्ड, दूधिया या अमलतास ।	2.	वस्ति	जल, वायु।
3.	वस्ति	गौमूत्र, सौफ या पलाश एवं बस्ति यंत्र।	3.	नेति (जल एवं सूत्रनेति)	नमक, जल, नेतिपात्र, एवं सूत्रनेति।
4.	नस्य	सरसों, बडी इलायची या महुआ एवं नस्य यंत्र।	4.	नौलि	— — —
5.	रक्तमोक्षण	जलौका, काँच, नख या पत्थर।	5.	त्राटक	घृत दीपक या अन्य सूक्ष्म लक्ष्य।
			6.	कपालभांति	नमक एवं जल

5. त्रिदोष व त्रिगुणों में असंतुलन है जिनकी समता के लिए पंचकर्म व षट्कर्म चिकित्सा उत्तम होती है (Mishra, 2001) ।
6. पंचकर्म व षट्कर्म के माध्यम से कुपित दोषों को शरीर से बाहर निकाल दिया जाता है, जिससे शुद्ध हुए शरीर में पुनः रोग उत्पन्न नहीं हो पाता (Chauhan, 2005) ।

7. पंचकर्म व षट्कर्म दोनों काफी समान है। इनके प्रभाव लगभग एक जैसे पड़ते हैं (Sujathak, 2004)।
8. कुछ रोगों में षट्कर्म प्रभावकारी होता है और कुछ में पंचकर्म प्रभावकारी होता है। यह प्रभाव इन शोधन क्रियाओं की क्रियात्मक भिन्नता व शोधन क्रियाओं में प्रयोग होने वाली औषधियों तथा इन क्रियाओं में लगने वाली समयावधि के कारण होता है।

उपर्युक्त तथ्यों की विस्तृत विवेचना आगे वर्णित है।

foopuk

प्रस्तुत परिणाम यह प्रतिपादित करते हैं कि षट्कर्म व पंचकर्म के मध्य समानताएँ हैं और इसके साथ–साथ विषमतायें भी विद्यमान हैं। यद्यपि इसके परिप्रेक्ष्य में पर्याप्त शोध कार्य नहीं हुए हैं। कुछ ही शोध कार्य एवं मूलभूत सिद्धान्तों से यह दृढ़तापूर्वक प्रमाणित होता है कि इनके मध्य समानताओं व विषमताओं दोनों का अस्तित्व है। ये दोनों कर्म त्रिदोषों का निरहरण करके साम्य स्थापित करने में सहायक है (सिंह, 2002)। त्रिदोषों के साम्य को ही आयुर्वेद में स्वास्थ्य का परिचायक माना गया है और योग भी इसी प्रकार की विचारधारा रखता है। शोधन और स्वास्थ्य को उद्देश्य बनाकर इन दोनों कर्मों को सम्पन्न कराया जाता है। षट्कर्म शोधन करके शरीर में अनूठे गुणों को स्थापित करने में सहायक है, पंचकर्म भी त्रिदोषों का निरहरण कर शारीरिक क्षमता व रोग प्रतिरोधक क्षमताओं को बढ़ाने में सहायता प्रदान करता है। पंचकर्म के अन्तर्गत शरीर के उर्ध्वभाव (कफ स्थान) का वमन से, मध्य भाग (पित्त स्थान) का विरेचन से एवं शरीर के अधःभाग (वायु का स्थान) का वस्ति चिकित्सा से शोधन किया जाता है (निगम, 1999)। षट्कर्म द्वारा इन्हीं दोषों के निरहरण के लिए– दण्ड धौति, वमन धौति, वस्त्र धौति, कफ के लिए– वारिसार धौति पित्त तथा वायु दोषों के लिए– वस्ति (जल एवं स्थल) बताई गई है।

रोगोत्पत्ति का मूल कारण अधारणीय वेगों को धारण करना है। अतः वेगावरोधन्य व्यक्तियों में पंचकर्म व षट्कर्म श्रेष्ठ चिकित्सा विधि है क्योंकि इन दोनों शोधन प्रक्रियाओं में सभी प्रकार के स्रोतोवरोधों को दूर करने की क्षमता है। जिससे रोगों के मूल को ही समाप्त कर दिया जाता है (शास्त्री, 2001)। इस प्रकार यह प्रमाणित होता है कि पंचकर्म व षट्कर्म दोनों की ही शोधन क्रियायें समान उद्देश्यों को लेकर कार्य करती है व समान उद्देश्यों को प्राप्त करती है।

पंचकर्म व षट्कर्म की क्रियायें क्रियात्मक रूप में समानता रखती है, जिसका विवरण सारणी में प्रस्तुत है–

सारणी (2): अंगों के शोधन की दृष्टि से समानता

Ø- l-	'kV~de fof/k	vax	iapde fof/k
1	वमन, दण्ड एवं वस्त्र धौति।	आमाशय।	वमन कर्म
2	वारिसार (शंखप्रक्षालन) एवं वातसार।	आन्त्र एवं पाचन संस्थान।	विरेचन कर्म
3	जल वस्ति, स्थल वस्ति एवं गणेश क्रिया।	पक्वाशय।	वस्ति कर्म
4	जलनेति, सूत्र नेति एवं कपालभाति।	नासारन्ध्र, शीर्ष प्रदेश एवं कण्ठ।	नस्य कर्म
5	जिह्वामूल एवं दन्तमूल।	दन्त, मुख एवं जिह्वा।	कवल गण्डूष
6	कर्णरन्ध्र।	कान।	कर्ण पूरण
7	कपालरन्ध्र।	शीर्ष संस्थान (मस्तिष्क)	शिरोधारा एवं शिरवस्ति।
8	व्युत्क्रम कपालभाति।	नासारन्ध्र, शीर्ष एवं कण्ठ।	जलनस्य कर्म

पंचकर्म व षट्कर्म की भिन्नता को जानने के लिए भोले ने कुछ व्यक्तियों पर यौगिक क्रियाओं का प्रभाव देखा (Bhole, 1988)। वहीं कुछ अन्य व्यक्तियों पर पंचकर्म का प्रभाव देखा और प्राप्त परिणाम में पाया कि कुछ रोगों में षट्क्रियायें प्रभावशाली होती है और कुछ रोगों में पंचकर्म प्रभावशाली होता है। यह प्रभाव इन क्रियाओं की क्रियात्मक भिन्नता व शोधन क्रियाओं में प्रयोग होने वाली औषधि तथा इन क्रियाओं में लगने वाली समयावधि के कारण पड़ता है।

पंचकर्म को तीन चरणों में पूरा किया जाता है। सबसे पहले पूर्व कर्म के अन्तर्गत ऐसी क्रियाओं का समावेश किया गया है जो शरीरस्थ दोषों को उनके मूल स्थानों से ढीलाकर एवं हिलाकर कर गमनशील अवस्था में लाते हैं। इसके बाद प्रधान कर्म द्वारा उन्हें गमन मार्ग से शरीर से बाहर निकाल दिया जाता है और पश्चात् कर्म में कुछ ऐसे नियम व आहार व्यवस्था का विधान बताया है जो शुद्ध हुए शरीर को पुनः क्रियाशील बनाकर शोधन के बाद उत्पन्न होने वाले उपद्रवों से बचाते हैं। षट्कर्म की शोधन क्रियाओं में सभी क्रियाओं

को एक ही चरण में पूरा करवाया जाता है। पूर्वकर्मों का षट्कर्मों में समावेश न होने से पंचकर्म के अन्तर्गत आने वाले पूर्वकर्मों के लाभ से व्यक्ति वंचित रह जाता है।

पंचकर्म के अन्तर्गत आने वाले रक्तमोक्षण में अशुद्ध रक्त को निकालने के लिए शल्य क्रिया का प्रयोग किया जाता है तथा दूषित रक्त के निरहरण के लिए जलौका का प्रयोग भी किया जाता है। रक्तमोक्षण क्रिया को सम्पन्न कराने के लिए एक निश्चित स्थान पर भेदन व काट कर रक्त को निकाला जाता है (शुक्ल, 2000)। यौगिक षट्कर्म में इस प्रकार की किसी क्रिया का वर्णन नहीं किया गया है।

पंचकर्म का नस्य कर्म ओलफैक्टरी नर्व (Olfactory nerve) के द्वारा केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र (Central Nervous System) को औषधीय गंध का संकेत पहुँचाता है, जिससे मस्तिष्क में स्थित एमाइग्डलैड केन्द्र (Amygdaloid nuclei), पाइरीफार्म क्षेत्र (Pyriform area) तथा प्रीफ्रन्टल कार्टेक्स (prefrontal cortex) तक भिन्न–भिन्न गंध की संवेदनायें पहुँच जाती है और वहाँ उतेजना करती हैं (Pinel, 2012)। जिससे मस्तिष्कीय दोषों का निरहरण होता हैं। जबकि षट्कर्म की नेतिक्रिया में जल व सूत्र घर्षण से मस्तिष्क के विभिन्न क्षेत्र में उत्तेजना उत्पन्न होती है, जिससे तत्काल अनुकम्पी तंत्रिका तंत्र (sympathetic nervous system) की क्रियाशीलता बढ़ती है। कुछ समय पश्चात् परानुकम्पी तंत्रिका तंत्र (parasympathetic nervous system) समस्त क्रियाशीलता को कम कर देता है, जिससे शीर्ष संबंधी रोगों में लाभ मिलता है (Vicente, 2008)। अतः ये दोनों क्रियायें एक दूसरे से क्रियात्मक प्रभाव के आधार पर भिन्न है।

पंचकर्म की वमन प्रक्रिया में वामक द्रव्य प्रायः उत्क्लेश, लालास्राव में स्वेद प्रकृति, वायु वह स्रोतों तथा अन्ननलिका में कफ स्राव के साथ होता है, जिससे नाड़ी की गति बढ़ जाती है और श्वास अनियमित हो जाती है, जिससे जठरागमीय (cardiac sphincter) द्वार खुल जाता है तथा जठरनिर्गमीय (pyloric sphinter) द्वार बंद रहकर जोरदार संकुचन करता है। इसी समय उदर की पेशियाँ और डॉयफ्राम (diaphragm) संकुचित होते हैं और आमाशय के द्रव्य बाहर निकल जाते हैं (Guyton, 2006) । इस प्रक्रिया से स्नेहन के द्वारा द्रवित किये हुए दोष भी सरलता से बाहर निकल जाते हैं। जबकि षट्कर्म की वमन, वस्त्र व दण्ड धौति से उत्पन्न वोमेंटिग रिफलैक्स (vomitting reflex) के कारण छाती में एक शून्य उत्पन्न हो जाता है, जिसके द्वारा हमारे फेफड़े अपने भीतर एकत्रित कफ एवं अशुद्ध तत्व को बारह निकाल देते हैं। इसके साथ–साथ वमन धौति के नियमित अभ्यास से अनैच्छिक प्रतिक्रिया के प्रति ऐच्छिक निपुणता भी विकसित हो जाती है, जिससे गैस्ट्रिक इम्पटींग टाइम (gastric emptying time) बढ़ जाता है। परिणामस्वरूप आमाशयगत (stomac content) भोजन छोटी आँत में नियंत्रित तरीके से धीरे–धीरे जाते हैं। इससे मधुमेह के रोगियों को भी विशेष लाभ पहुँचता है (Srikanta *et. al.*, 2004)।

पंचकर्म की विरेचन प्रक्रिया का नियंत्रण मस्तिष्क में मेडुला ओबलौगेटा (medulla oblongata) में होता है। यह श्वास केन्द्र तथा वमन केन्द्र के नजदीक होता है। इसलिए विरेचन द्रव्यों से विरेचन केन्द्र में उत्तेजना होने से वमन केन्द्र शिथिल हो जाता है। विरेचन के समय श्वास–प्रश्वास को रोककर पीड़न किया जाता है। इससे डायफ्राम (diaphragm) की पेशी भी नीचे दब जाती है। यह पेशी अनुप्रस्थ कोलन (transverse colon) को नीचे दबाती है और मल नीचे चला जाता है, जिससे आँत भित्तियाँ उत्तेजित होकर गति करती हैं और अवरोही कोलन (descending colon) में सिग्मॉइड कोलन (sigmoid colon) तथा गुदा (anus) तक मल पहुँच जाता है और मल विसर्जित हो जाता है। विरेचन में प्रयुक्त विरेचक द्रव्य छोटी आँत की कुछ ग्रंथियों को उतेजित करता है, जिससे वातजनित गठिया दूर होता है (Chandra, 2001)। वारिसार धौति के अन्तर्गत नमकीन गुनगुना जल व कुछ आसन के अभ्यास के द्वारा इस प्रक्रिया को करवाया जाता है।

पंचकर्म की वस्ति में अनेक प्रकार के स्नेह द्रव्यों का प्रयोग किया जाता है जिसका प्रत्यक्ष अवशोषण हो जाता है। शोध अध्ययन से यह सिद्ध हुआ है कि वस्ति क्रिया से रक्त में स्नेह तथा प्रोटीन बढ़ते हैं। कीटोएसिड तथा पाइवुरिक एसिड (keto acid and pyruvic acid) नामक तत्व कम हो जाता है। यह आन्त्र कृमि का नाश करती है। पक्वाशय कृमियों का स्थान है। वस्ति उन कृमियों का नाश और शोधन करती है। वस्ति के महत्वपूर्ण कार्य स्थानीय वात नाड़ियों पर प्रशमन के तौर पर होता है, वात से अनेक प्रकार के शूल होते हैं और शोधन के कार्य से पक्वाशय कटिपार्श्व तथा कोष्ठ में दबाव कम हो जाने से अनेक वातकृत शूल तुरन्त कम हो जाते हैं। षट्कर्म में वस्ति द्वारा आन्त्र शोधन जल तथा वायु के द्वारा होता है (झा, 2001)। षट्कर्म में वस्ति द्वारा इसी उद्देश्य को बिना औषधियों के प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है।

सामान्य पूरक के दौरान मस्तिष्क के चारों ओर पाया जाने वाला सेरेब्रोस्पाइनल द्रव संकुचित हो जाता है, जिससे मस्तिष्क भी संकुचित होता है रेचन के दौरान सेरेब्रोस्पाइनल द्रव प्रसारित होता है, जिससे मस्तिष्क भी प्रसारित हो जाता है। यह श्वसन चक्र का मस्तिष्क पर पड़ने वाला यांत्रिक

प्रभाव है। इसी प्रकार कपालभाति में किया जाने वाला बलपूर्वक रेचन के फलस्वरूप मस्तिष्क में प्रसारण की क्रिया बढ़ जाती है जिससे मस्तिष्क की कार्यक्षमता बढ़ जाती है (Bhagirathi, 2006)। इस क्रिया के समान पंचकर्म में कोई क्रिया नही है।

नौलि क्रिया पेल्विक रीजन (Pelvic region) में पाये जाने वाले नर्व प्लेक्सस (Nerve Plexus) में यांत्रिक उत्तेजना उत्पन्न करता है जिससे एड्रीनल, पेन्क्रियाज, ओवरी व टेस्टीज से होने वाले रसायनो का स्त्राव संतुलित हो जाता है (Bhole, 2009)। इस क्रिया के समान भी पंचकर्म में कोई क्रिया नहीं है। त्राटक के प्रभाव से सिम्पैथेटिक व पैरासिम्पैथेटिक नर्वस सिस्टम में संतुलन स्थापित होता है। जिससे अल्फा तरगें शान्त स्थिति में देखी गई है। अतः यह न्यूरोटिसिज्म व डिप्रेसन जैसे रोगों में सहायक सिद्ध होता है (Gore, 2008)।

इसके समान भी कोई क्रिया पंचकर्म में नही है। पंचकर्म और षट्कर्म की शोधन क्रिया का सूक्ष्मता से अवलोकन करने पर जहाँ उद्देश्य प्राप्ति में समानता है, वहीं क्रियात्मक भिन्नता भी है।

fu"d"k

उपर्युक्त विवेचना से यह उद्घाटित होता है कि प्राचीन आयुर्विज्ञान व योग की शोधन क्रियाएँ पंचकर्म व षट्कर्म है। इनका सिद्धान्त शोधन व शमन पर आधारित है, इनका उद्देश्य जीवन में स्वास्थ्य, संतुलन व साम्यावस्था स्थापित करना है। इसके लिए पंचकर्म में कुछ औषधियों का भी प्रयोग होता है, जबकि षट्कर्म में नहीं होता है। यद्यपि इन दोनों की क्रियाओं में सामान्य समरूपता है। अतः ये दोनों क्रियायें एक दूसरे से समानता रखते हुए भी किंचित परिप्रेक्ष्य में परस्पर एक दूसरे से भिन्न हैं। पंचकर्म व षट्कर्म में मौलिक भिन्नता यह है कि पंचकर्म में औषधि का सेवन होना तथा दूसरे में औषधि का प्रयोग न होना ही प्रतीत होता है।

सुनील कुमार, पी–एच.डी., असिसटेंट प्रोफेसर, मानव चेतना एवं योग विज्ञान विभाग, देव संस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार, भारत; विनोद उपाध्याय, एम.डी, पी–एच.डी., प्रोफेसर, हिमालयीय आयुर्वेद कॉलेज, देहरादून, भारत।

---

lnHk lph

xlr] dfojkt vf=no ¼2000½ *अष्टांग हृदय सूत्र* / वाराणसीः चौखम्बा संस्कृत संस्थान, पृ. 100, 101

>k] firkEcj ,o fnxEcj ¼2001½ *हठ प्रदीपिका* / पुणे : कैवल्यधाम योग मंदिर समिति, पृ. 33, 47

fuxe] mek'kdj ¼1999½ *क्लीनिकल पंचकर्म* / उज्जैन : स्टडी पैलेस, पृ. 18

'kkL=h] lR;ukjk;.k ¼2001½ *चरक संहिता (भाग–1)* / वाराणसीः चौखम्बा भारतीय अकादमी, सूत्रस्थान, पृ. 5, 424, 573

'kDy] fo|k/kj ¼2000½ *कायचिकित्सा* / वाराणसीः चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, पृ. 31

'kDy] fo|k/kj ,o f=ikBh] jfonRr ¼2003½ *आयुर्वेद का इतिहास एवं परिचय* / दिल्लीः चौखन्ना सांस्कृतिक प्रतिष्ठान, पृ. 3

ljLorh] fuj tukuUn ¼1997½ *घेरण्ड संहिता* / मुंगेर% योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, पृ. 15, 23

flg] jkeg"k ¼1999½ *योग एवं यौगिक चिकित्सा* / दिल्ली% चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, पृ. 78

flg] jkeg"k ¼2002½ *स्वस्थवृत विज्ञान* / दिल्ली% चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, पृ. 13

Bhagirathi, S. E. (2006, December) Effect of Kapalbhati On Vital Capacity & Breath Holding Capacity. *5th International Conference.* Puna: Kaivalya dham, p. 51-52

Bhole, M.V. & Karambelkar, P. V. (2009) Water Suction in internal cavities during Udhyan band & Nauli. *Yoga Mimamsa, **40*** (3 & 4), 33-38.

Bhole, M.V. (1988) Yogic Shatkarm & Ayurvedic Panchkarm some thought and reflection. *Yoga Mimamsa, **28*** (3 & 4), 81-89.

Chandra, N. (2001, March) Erandtail Tail Ek Gun Aneka. Ayurvedic Vikas. Ghaziabad: A Dabur Pvt. Ltd, p.165

Chauhan, P. & Poornima, K. (2005, June) Panchakarma Chikitsa Me Vasantik Vaman Karam Ki Upadeyata. *Sachitra Ayurveda.* Patna: Shri Vedhnath Prakashan, p. 897

Gore, M. M. & Gharote, M. L. (1980) Effect of some yogic practices on flow rate and lungs capacity. *Yoga Mimamsa, **1*** (2), 100-104.

Guyton, A. C. (2006) Textbook of Medical Physiology. New Delhi: Elserier India Pvt. Ltd, p. 669, 824.

Mishra, L., Singh, B.B. & Dagenais, S. (2001) Ayurvedic Therapies into the health care system. *Alternative therapy in Health and Medicine, **7(***2), 44-50.

Pinel, J. (2012) *Biopsychology*. New Delhi: Pearson Education, p. 179.

Srikanta, S. S., Nagratna, H. R. & Nagratna, P. (2004) *Yoga for Diabetes*. Banglore: Swami Vivekanand Prakashan, p.100-103.

Sujathak, J. (2004) Changes in Heart Rate Variability After Kunjal Kriya (Unpublished Dissertation). Vivekanand Yoga Anusandhan Sansthan : Banglore.

Vicente, P. D. (2008) Nati kriya in the management of Bronchial ashthma and Chronic Spastic Bronchitis. *Yoga Mimamsa, **40*** (1 & 2), 46- 52.